Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 5, July-2018, ISSN 2230-7540

अभ्रक उद्योग का विकास

Dr. Ranjan Kumar*

ICHR, JRF, UGC Net, Patna University, Patna, Bihar

सार – *प्राचीन काल में भारत के अभ्रक का उपयोग चिकित्सा एवं आभूषण-सज्जा में तथा मध्यकालीन भारत में अकबर के शासनकाल (1556-1605 ई.) में मध्य-पूर्व के मुस्लिम राष्ट्रों को मुहर्रम के अवसर पर तजिया निर्माण हेतु अभ्रक का निर्यात किया जाता था। लेकिन इन के बावजूद यह कहना कठिन है कि झारखंड में अभ्रक उद्योग प्राचीन काल एवं मध्यकाल में सुनियोजित रूप से संगठित था। झारखंड में अभ्रक का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना है। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अंग्रेजों ने अभ्रक का अत्यधिक दोहन किया, लेकिन अभ्रक उद्योग के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया।*

सन् 1947 में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अखिल भारतीय काँग्रेस समिति ने एक आर्थिक कार्यक्रम समिति गठित किया गया। जिसके अंर्तगत सार्वजनिक क्षेत्र के लिए प्रतिरक्षा, प्रमुख उद्योग और जनसेवाएँ तय किया गया।इस क्रम में सरकार का ध्यान अभ्रक उद्योग के विकास पर भी गया। इसके बावजूद, 1964 *इस्वी के पहले तक अभ्रक उद्योग कुछेक बड़े निर्यातकों तक हीं सीमित था। जून, 1974 में स्थापित 'मिटको' (माइका ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन ऑफ़ इंडिया लिमिटेड) ने अभ्रक उद्योग के विकास एवं शोध की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किया।*

आधुनिक काल में झारखंड में अभ्रक उद्योग भारत के विदेशी व्यापार पर निर्भर है। क्योंकि हमारे देश में अभ्रक की जो खपत है, वह काफी कम है। अतः अभ्रक के अंतराष्ट्रीय मांग पर ही अभ्रक उद्योग का विकास निर्भर है।

सन् 1930 ईस्वी के पहले लघु पैमाने पर उतार-चढ़ाव के साथ झारखंड (तत्कालीन बिहार) में अभ्रक के निर्यात में वृद्धि होती गई।प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ के समय बाजार के भविष्य की अनिश्चितता के कारण इसकी स्थिति बिगड़ती चली गई। अतः सरकार द्वारा एक योजना लाई गई जिसके तहत वह अभ्रक का क्रय कर उसे अपने अधिग्रहण में ले ली। सिसे यह लाभ हुआ कि अभ्रक निर्यात में अचानक वृद्धि हो गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले और बाद में अभ्रक की अंतर्राष्ट्रीय मांग में वृद्धि होने से इसके उत्पादन में स्वभाविक रूप से वृद्धि हुई। इस समय विश्व-बाजार में अभ्रक उद्योग का लगातार विस्तार होता गया। साथ हीं, अभ्रक की कीमत में लगातार वृद्धि हुआ। जिसके परिणाम स्वरुप अभ्रक की मांग में वृद्धि के कारण अभ्रक के उत्पादन एवं उसके मूल्यों में तीव्र वृद्धि हुई। अतः आवष्यक है कि अभ्रक उद्योग को बचाने एवं अभ्रक खदाने के बंद होने को रोकने के लिए प्रभावकारी कदम उठाया जाए।

मुख्य शब्द: *अभ्रक उघोग, मिटको, प्राचीन भारत में अभ्रक की उपयोगिता, झारखण्ड अभ्रक का निर्यात।*

----------X----------

मुख्य आलेख:

झारखंड में अभ्रक उद्योग के विकास का इतिहास काफी रोचक एवं संघर्षशील रहा है। लेकिन यह बता पाना थोड़ा मुश्किल है कि एक संगठित उद्योग के रूप में झारखंड में अभ्रक का विकास कब हुआ? वैसे अभ्रक के रूप में इसका प्रमाणिक उल्लेख सर्वप्रथम सर्जन पी॰ ब्रिटन ने 1826 ई॰ में किया, पर इस बात के पर्याप्त साक्ष्य हैं कि झारखंड में अभ्रक का अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल से ही रहा है। भारत के पौराणिक कथाओं से भी पता चलता है कि अभ्रक का उपयोग सतयुग से होता रहा है। प्राचीन काल से ही भारत के अभ्रक का उपयोग चिकित्सा एवं आभूषण-सज्जा में होता रहा है। मध्यकालीन भारत में अकबर के शासनकाल (1556-1605 ई॰) में मध्य-पूर्व के मुस्लिम राष्ट्रों को मुहर्रम के अवसर पर तजिया निर्माण हेतु अभ्रक का निर्यात किया जाता था। लेकिन इन साक्ष्यों के बावजूद यह कहना मुश्किल है कि झारखंड में अभ्रक उद्योग प्राचीन काल एवं मध्यकाल में सुनियोजित रूप से संगठित था।

www.ignited.in

अपने आधुनिक स्वरूप में झारखंड में अभ्रक का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना है। अभ्रक उत्पादन एवं भंडारण की दृष्टि से झारखंड का सबसे अग्रणी राज्य रहा है। आजादी के पहले बिहार अभ्रक के क्षेत्र मुख्यतः तीन जिलों हजारीबाग, गया एवं मुंगेर में थे जो विश्व के अत्यंत महत्वपूर्ण अभ्रक उत्पादक क्षेत्र थे। 15 नवम्बर 2000 ईस्वी को बिहार विभाजन के बाद झाखंड के कोडरमा, गिरिडीह एवं हजारीबाग जिलों में अभ्रक बहुतायत रूप से पाया जाता है। अतः झारखंड में अभ्रक उद्योग का विकास भी मुख्यतः इन्हीं क्षेत्रों में हुआ है। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अंग्रेजों ने अभ्रक का अत्यधिक दोहन किया, किन्तु अभ्रक उद्योग के विकास की दिशा में उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति तक झारखंड में अभ्रक उद्योग का अपेक्षित विकास नहीं हो सका।

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वतंत्र भारत की सरकार ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) के दौरान उद्योग के विकास को मुख्य लक्ष्य बनाया। सन् 1947 में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अखिल भारतीय काँग्रेस समिति ने एक आर्थिक कार्यक्रम समिति गठित की। इसने सार्वजनिक क्षेत्र के लिए प्रतिरक्षा, प्रमुख उद्योग और जनसेवाएँ तय की। समिति ने कहा कि वर्तमान उद्योगों के मामले में निजी से सार्वजनिक स्वामित्व में हस्तांतरण पांच वर्षों के बाद शुरू होगा। इस बात पर पुंजीपतियों ने काफी हो-हल्ला मचाया। इस क्रम में सरकार का ध्यान अभ्रक उद्योग के विकास पर भी गया। इसके बावजूद, 1964 इस्वी के पहले तक अभ्रक उद्योग कुछेक बड़े निर्यातकों तक हीं सीमित था। जून, 1974 में स्थापित 'मिटकों' (माइका ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन ऑफ़ इंडिया लिमिटेड) ने अभ्रक उद्योग के विकास एवं शोध की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास करना आरंभ किया। इसने डुमरी तिलैया, डोमचांच, गिरिडीह आदि जगहों पर अभ्रक प्रोसेसिंग कारखानों की स्थापना की। इसके फलस्वरूप अभ्रक के उत्पादन में वृद्धि हुई और यहाँ से सोवियत संध, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों में व्यापक पैमाने पर अभ्रक निर्यात होने लगा। लेकिन सन् 1985 ईस्वी के बाद अभ्रक के अंतराष्ट्रीय मांग में तेजी से गिरावट आने से झारखंड के अभ्रक उद्योग को गहरा झटका पहुँचा।

आधुनिक काल में झारखंड में अभ्रक उद्योग वस्तुतः भारत के विदेशी व्यापार का विस्तार ही है। क्योंकि हमारे देश में अभ्रक की जो खपत है, वह काफी कम है। अतः अभ्रक के अंतराष्ट्रीय मांग पर ही अभ्रक उद्योग का विकास निर्भर है। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि अभ्रक उत्पादन के हमारे पास जो उपलब्ध आंकड़े है, वह सामान्य उत्पादन से कम ही है। सामान्य से कम उत्पादन का मुख्य कारण यह है कि अभ्रक उत्पादन से जुड़े हुए लोग जिनका अपना निजी स्वामित्व होता है अथवा जो जमींदार होते है वे भी इस व्यापार से जुड़े होते हैं और सही उत्पादन की जानकारी उपलब्ध नहीं कराते हैं। सन् 1919 ई॰ के बाद अभ्रक निर्यात के जो आंकड़े हैं, उसके अनुसार, हमारा अध्ययन भारत में अभ्रक निर्यात व्यापार के उत्थान एवं पतन पर आधारित है। 1897-98 में तत्कालीन बिहार में 8344 किलोवाट अभ्रक का निर्यात किया गया। अगले साल 1898-99 ईस्वी में ये आंकड़े गिरकर 7720 किलोवाट हो गया। पुनः अगले वर्ष इसके निर्यात में अचानक वृद्धि हुई और निर्यात बढ़कर 15473 किलोवाट हो गया। इस आकस्मिक वृद्धि का कारण यह था कि 1898 ई॰ में भारतीय अभ्रक के जो खनिक थे उन्हें यह एहसास हुआ कि अपशिष्ट अभ्रक (बेकार अभ्रक) का भी उपयोगिता है। फलतः खनिक वर्ग ने इसकी भी आपूर्ति करना प्रारंभ कर दिया। आगे चलकर, अपशिष्ट अभ्रक का उपयोग माइकानाइट के निर्माण में होने लगा जिसमें अभ्रक को परत-दर-परत एक साथ मोड़ दिया जाता है। इसमें पूर्व आकार में जो परत होते हैं, उनका ही उपयोग होता है और उनकी सफाई करके उन्हें पतले परत में किया जाता है। इनमें से जो उत्तम किस्म के होते हैं, उनका चयन कर उन्हें वे बाजार में जाकर बिना इसके सही मूल्य के बिक्री कर देते हैं। 1897 ई॰ में अभ्रक निर्यात की जो सामान्य कीमत थी वह 6.4 (पौंड) प्रति किलोवाट थी। 1899 ई॰ में इसकी कीमत घटकर 3.25 (पौंड) प्रति किलोवाट हो गयी, लेकिन 1900 ई॰ के बाद इसकी कीमत बढ़कर 4.3 (पौंड) प्रति किलोवाट हो गई।

इस प्रकार सन् 1930 ईस्वी के पहले लघु पैमाने पर उतार-चढ़ाव के साथ झारखंड (तत्कालीन बिहार) में अभ्रक के निर्यात में वृद्धि होती गई। 1912-13 ई॰ तक अभ्रक का निर्यात बढ़कर 56504 किलोवाट हो गया। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ के समय बजार के भविष्य की अनिश्चितता के कारण इसकी स्थिति बिगड़ती चली गई और 1913-14 ईस्वी तक अभ्रक का निर्यात गिरकर 41,313 किलोवाट हो गया। इसके कारण अभ्रक की मांग लगातार घटती चली गई और बाजार में इसका मूल्य घटने के कारण तत्कालीन बिहार के बहुत सारे अभ्रक खदानों को हजारीबाग और मुंगेर में बंद करना पड़ा। 1916 ई॰ से इसकी महत्ता पुनः महसूस होने लगी और झारखंड (तत्कालीन बिहार) में इसकी मांग लगातार बढ़ती चली गयी। सरकार द्वारा एक योजना लाई गई जिसके तहत वह अभ्रक का क्रय कर उसे अपने अधिग्रहण में ले ली। इसका फायदा यह हुआ कि अभ्रक निर्यात में अचानक वृद्धि हो गई जो पहले 1916-17 ई॰ में 52,890 किलोवाट और फिर 1917-18 ई॰ में 55,943 किलोवाट हो गई। सन् 1918 में तत्कालीन बिहार में अभ्रक का उत्पादन अपने उच्चतम आंकड़े 45,608 किलोवाट से घटकर 1919 ई॰ में 34,230 किलोवाट हो गया और 1921 ई0 में और भी घटकर 26,058 किलोवाट मात्र हो

www.ignited.in

गया। यह तत्कालीन बिहार में अभ्रक के उत्पादन में बहुत बड़ा आघात था जिसका उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। सन् 1925 में कुल उत्पादन 46,000 किलोवाट में से 39,210 किलोवाट की आपूर्ति की गई जो गलत मालूम पड़ता है। इसका कुल निर्यात लगभग 1,00,0000 किलोवाट था जो रिपोर्ट किए गए उत्पादन से लभग दुगुना था।

निम्नलिखित तालिका में झारखंड (तत्कालीन बिहार) के अभ्रक उद्योग के उत्पदान और उसकी कीमत को दर्शाया जा रहा है:-

वर्ष	मात्रा (किलोवाट)	मूल्य (रूपये में)
1929	42,560	20,77,789
1930	40,887	19,92,204
1931	31,720	16,69,720
1932	24,097	10,35,466
1933	32,674	12,59,180
1934	45,979	16,86,266
1935	50,821	21,38,731
1936	71,738	27,00,147
1937	85,978	31,70,933
1938	84,235	34,12,315
1939	86,765	38,79,280
1940	84,270	अनुपलब्ध
1941	84,270	अनुपलब्ध
1941	1,28,955	अनुपलब्ध
1942	1,21,774	अनुपलब्ध
1943	1,03,468	अनुपलब्ध
1944	1,00,299	अनुपलब्ध
1945	84,812	अनुपलब्ध
1946	91,428	93,49,168

सन् 1929 ई0 में में झारखंड (तत्कालीन बिहार) में अभ्रक का उत्पादन 42,560 किलोवाट था जो 1930 ई0 में घटकर 40,887 किलोवाट हो गया। अगले वर्ष 1931 ई0 में घटकर 31,720 किलोवाट हो गया और पुनः 1932 में उत्पादन घटकर 24,097 किलोवाट हो गया जिसका मूल्य 10,35,466 रूपये मात्र थे। यह तत्कालीन बिहार के अभ्रक उत्पादन में पुनः एक बहुत बड़ा आघात था जिसका उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि सन् 1929 ई0 में अभ्रक की अच्छी मांग थी जो कुछ समय तक व्यवस्थित रहा। लेकिन 1930 ई0 के अंत तक अभ्रक का जितना भंडार था, उससे अधिक इसकी मांग होने लगी। काफी दिनों तक अभ्रक उद्योग की स्थिति दयनीय रही। इसका प्रमुख कारण था- अभ्रक पर आधारित एक गैर-कानूनी एवं दोष पूर्ण अधिनियम का 1932 ई0 में पारित होना। इस अधिनियम में इस बात की चर्चा थी कि अभ्रक उद्योग की सुरक्षा के लिए वितरक (डीलर्स) को पंजीकरण और लाईसेंस की जरूरत पड़ेगी। सन् 1931 ई0 में विदेशी बाजार अभ्रक के भंडार से भरे पड़े थे जबकि बाजार में कोई खरीददार नहीं था। इसके परिणामस्वरूप अभ्रक के मूल्य में 10 प्रतिशत तक की गिरावट आई और 1931 ई के अंत तक एकदम लघु पैमाने पर अभ्रमक के खदानों में खुदाई का काम हुआ और 1932 ई0 में बहुत-से खादानों को बंद कर देना पड़ा।

झारखंड के अभ्रक खदानों एवं उसमें काम करनेवाले मजदूरों पर इन परिस्थितियों का बहुत हीं बुरा प्रभाव पड़ा। जब अभ्रक के मूल्यों में गिरावट आई तो बहुत-से अभ्रक खदानों को बंद करना पड़ा। इससे अभ्रक के उत्पादन में भी गिरावट आई। बहुत से खदान मालिकों ने अपने खानों को चालू रखने के लिए मजदूरी में काफी कटौती की। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में अभ्रक खानों में कार्यरत पुरूष श्रमिकों को 04 आना और महिला श्रमिकों को सिर्फ 03 आना प्रतिदिन के हिसाब से मिलता था। इतनी कम मजदूरी पर गुजारा कर पाना काफी मुश्किल था। इससे मजदूरों के जीवन-स्तर में पहले से और भी गिरावट आई। यद्यपि सरकार ने अभ्रक के उत्पादन को बढ़ाने हेतु अपने तरफ से कोई प्रयास नहीं किया। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले और बाद में अभ्रक की अंतर्राष्ट्रीय मांग में वृद्धि होने से इसके उत्पादन में स्वभाविक रूप से वृद्धि हुई।

सन् 1933 ई0 के बाद भारतीय अभ्रक निर्यात की स्थिति में सुधार होने लगा। सन् 1933 में इसका उत्पादन 32,674 किलोवाट था जो अगले वर्ष 1934 ई0 में बढ़कर 45,979 किलोवाट हो गया। यद्यपि 1933-34 में अभ्रक के मांग पर प्रतिबंध लगा था, फिर भी उसके निर्यात और मात्रा एवं उसकी कीमत में सुधार हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन बिहार में इसके उत्पादन में 24,097 किलोवाट से वृद्धि होकर 32,674 किलोवाट हो गया। इनमें से तीन-चैथाई उत्पादन केवल हजारीबाग से होता था। वर्ष 1935-36 ई0 में झारखंड (तत्कालीन बिहार) में अभ्रक उत्पादन में कुछ सुधार हुआ। इसका प्रमुख कारण पिछले वर्ष की तुलना में अभ्रक की मांग में वृद्धि होना था। फलतः 1935 में अभ्रक का उत्पादन 50,821 किलोवाट हुआ जिसका मूल्य 21,38,731 रूपये था। सन् 1938 में यह उत्पादन बढ़कर 84,235 किलोवाट हो गया जिसका मूल्य 32,12,315 रूपये था। इस दौरान विश्व-बाजार में अभ्रक उद्योग का लगातार विस्तार होता गया। साथ हीं, अभ्रक की कीमत में भी निरंतर वृद्धि होती गई। कुल मिलाकर अभ्रक की बढ़ती मांग के कारण अभ्रक के उत्पादन एवं उसके मूल्यों में तीव्र वृद्धि हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-45) के दौरान झारखंड (तत्कालीन बिहार) में अभ्रक उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। इसका

प्रमुख कारण यह था कि अभ्रक का सामरिक उपयोग (खासकर सुरक्षा उपकरणों में), औषधीय महत्व आदि कारणों से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अभ्रक की मांग में तीव्र वृद्धि हुई।

अतः सन् 1938 ई0 से 1946 ई0 पूरे विश्व में अभ्रक उत्पादन के वृद्धि का दौर था। अभ्रक के पुराने खदानों से उत्पादन तो होता ही रहा, कुछ और नए क्षेत्रों में अभ्रक खोज एवं खनन का कार्य शुरू किए गए। यद्यपि इसके उत्पादन में 1941 ई0 तक धीमी गति से वृद्धि हुई, लेकिन रडार एवं अन्य इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरणों में इसकी उपयोगिता के कारण इसके उत्पादन में काफी हद तक सुधार हुआ। सन् 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के कारण अभ्रक उत्पादन में पुनः गिरावट आई और असैनिक पदाधिकारियों को इसके उत्पादन की जरूरत महसूस होने लगी। हालांकि 1945 में इसकी मांग 1946 से भी ज्यादा थी।

अभ्रक के लिये द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले मुख्य बाजार निम्नलिखित थे।

(क) लंदन- यूनाइटेड किंग्डम एवं यूरोपीय महादेश के लिए।

(ख) न्यूयार्क - संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए।

(ग) हैम्बर्ग- जर्मनी के लिए तथा

(घ) जेनेवा- इटली के लिए।

जापान में द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले भारतीय अभ्रक की मांग की वृद्धि होने लगी। यहां अभ्रक व्यापार कई केन्द्रों पर बंटे हुए थे जिनमें मुख्य थे- टोक्यो, ओसाका, याकोहामा, नागोया इत्यादि। इन विदेशी बाजारों में अभ्रक का निर्यात तीन प्रकार से किया जाता था। अभ्रक के सबसे बड़े उत्पादक मुख्य विदेशी बाजार के लिए अभ्रक को थोक में रख लेते थे और जिसकी बिक्री उनके द्वारा नियुक्त बिचौलिए के माध्यम से किया जाता था। जिस स्थान पर थोक भाव में एकत्रित किया जाता था, वहां लोग विभिन्न जगहों पर विश्वास एवं बैंकों की देख-रेख में पूर्ण भुगतान करने के उपरांत बिचैलियों एवं खरीददार के बीच बिक्री बंद होती थी। बिचैलियों अभ्रक के मूल्य के संदर्भ में आवश्यक निर्देशों का पालन करते थे। अभ्रक के कुल निर्यात का लगभग 50 प्रतिशत अकेले झारखंड (तत्कालीन बिहार) से विदेशी बाजारों में भेजे जाते थे। गुणवत्तायुक्त अभ्रक का निर्यात विदेशी बाजार के लिए किया जाता था। ये मुख्य रूप से दलाल या वितरक एवं कुछ मामलों में ग्राहक होते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अधिकांश मामलों में अभ्रक के मूल्यों का भुगतान विदेशी खरीददारों द्वारा थोक में निर्यात किए गए अभ्रक का परीक्षण करने के उपरांत और उसे प्रमाणित करने के बाद किया जाता था। शत-प्रतिशत् कर्ज पर मान्यता प्राप्त गुणवत्ता वाले अभ्रक का निर्यात भारत में प्रतिष्ठित बैंकों के द्वारा विदेशी खरीददारों के द्वारा बैंकों में जमा किए गए जहाजों के कागजात के आधार पर दिया जाता था। 80 प्रतिशत ऋण के मामले में शेष रकम खरीददारों द्वारा अभ्रक की मांग एवं जांच के बाद हटा लिया जाना था।

लंदन का बाजार भारत के अभ्रक का सबसे महत्वपूर्ण बाजार था। यहीं से शेष विश्व के देशों को अभ्रक की आपूर्ति की जाती थी। यद्यपि भारत से सीधी अभ्रक की खरीददारी विश्व के कई देश करते थे। लंदन के बाजार में जो बिचैलिए होते थे, वह ग्राहक एवं भारतीय निर्यातक के बीच व्यापार की मध्यस्थता का काम करते थे। इसके बदले में उन्हें एक निश्चित कमीशन प्रतिशत के रूप में मिलती थी इसके अलावे, आयात करने वाले एजेंट भी होते थे जो प्रमुख भारतीय अभ्रक उत्पादकों के बिचैलिया होते थे। संभवतः ऐसे बहुत कम ही अभ्रक उत्पादक थे जिनका ग्राहकों के साथ सीधा संपर्क होता था। संयुक्त राज्य अमेरिका में लंदन के बाजार की तरह वैसा कोई बिचैलिया नहीं था। वहां अभ्रक के जो आयातक थे, वह भारतीय बाजार से एक निश्चित कीमत के आधार पर काम नहीं करते थे, बल्कि मुनाफे के आधार पर आयात किए गए उत्पादों को बेच देते थे। अभ्रक के संदर्भ में इस तरह की परंपरा जापान में भी प्रचलित थी, जबकि इटली एवं जर्मनी में कुछ बिचैलिए अभ्रक का व्यापार कमीशन के आधार पर करते थे। लेकिन कालांतर में इस प्रकार की मार्केटिंग की जो व्यवस्था थी उसमें परिवर्तन की बात होने लगी।

सन् 1940 इस्वी में भारतीय भूगर्भ-सर्वेक्षण के निदेशक द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए भारतीय बाजार से आवश्यकता से अधिक अभ्रक की खरीददारी कर ली गई। भारत से अभ्रक के निर्यात में कोई विशेष प्रतिबंध नहीं था और न हीं निजी खरीददारों द्वारा अभ्रक का मूल्य तय किए जाते थे। एक उचित कीमत और अभ्रक के नमूने के साथ व्यापारियों से निविदा (टेंडर्स) की मांग की जाती थी। सरकारी अभ्रक निरीक्षक द्वारा व्यापरियों के नमूने का परीक्षण के बाद टेंडर स्वीकार किया जाता था। जिन व्यापारियों का टेंडर निम्न दर वाले होते थे, उन्हें ही निविदा की शर्तो के आधार पर स्वीकार किया जाता था।

वास्तव में जो व्यापारी होते थे, उन्हें अभ्रक की आपूर्ति बंदरगाह पर करना पड़ता था जहां सरकारी अभ्रक निरीक्षक अभ्रक का परीक्षण कर उसे थोक भाव में स्वीकार करते थे। यदि अभ्रग बाजार के मापदंड के अनुसार होते थे तो उन्हें

www.ignited.in

प्रमाण-पत्र जारी किया जाता था जिसके लिए बिल का रसीद जमा करना पड़ता था। युद्ध सामग्री के महानिदेशक (डाईरेक्टर जनरल ऑफ़ म्यूटीशन) उत्पादन का रसीद जमा होने के बाद अतिशीघ्र हीं उन अभ्रकों की कीमत का भुगतान करते थे। 1942 के आरंभिक कुछ महीनों तक जब तक कि संयुक्त अभ्रक आयोग अपने अस्त्वि में नहीं आया, अभ्रक खरीददारी की यह व्यवस्था चलती रही।

भारत में अभ्रक का उत्पादन और खरीद-बिक्री अगस्त, 1942 से नवम्बर, 1945 तक गठबंधन देशों द्वारा चलता रहा। गठबंधन देशों में ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस और सोवियत संध शामिल थे। संयुक्त अभ्रक आयोग ही अभ्रक की गुणवत्ता और इसके भूमिखण्ड (ब्लॉक) की कीमत तय करने के लिए अधिकृत था। इस व्यवस्था के अंतर्गत क्रय-विक्रय के मामले में किसी भी व्यापारी से संपर्क नहीं किया जाता था। संयुक्त अभ्रक आयोग द्वारा तय किए गए मूल्यों का स्तर इतना निम्न होता था कि बाजार की कीमतों पर इसका असर दिखाई पड़ने लगा। इसके फलस्वरूप अभ्रक के व्यापारी इसका विरोध करने लगे। लेकिन बाद में जब अभ्रक की कीमत इसके प्रभावशाली व्यापार को तीव्रता प्रदान करने के दृष्टिकोण से संयुक्त अभ्रक आयोग द्वारा आपूर्ति स्वीकार करने में काफी उदारता का प्रदर्शन किया जाता था। इससे आपूर्तिकर्ता को हमेशा फायदा होता था। इसके अलावे, आयोग द्वारा बड़े पैमाने पर विशेष मांग के अनुरूप अभ्रक की आपूर्ति की जाती थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् अभ्रक उद्योग की स्थिति दयनीय हो गई। इसका प्रभाव संयुक्त अभ्रक आयोग में शामिल यूनाइटेड किंगडम एवं संयुक्त राज्य अमेरिका पर पड़ा। इन्होंने थोक भाव से अपने यहां अभ्रक का अधिशेष भंडारण कर लिया था।

गठबंधन देशों द्वारा अभ्रक के अवांछनीय भंडारण ने कम कीमत पर क्रय- विक्रय पर प्रश्न-चिन्ह् लगा दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत भारतीय अभ्रक बाजार का कैसा प्रभाव रहेगा? इस तरह की संशय के कारण भारतीय व्यापारी अपने अभ्रक को विदेशी बाजार में सरकारी मूल्य पर बेचने के लिए सोचने लगे। यदि विदेशों में अभ्रक का निर्यात निम्न दर पर किया जाता तो अभ्रक उद्योग को काफी नुकसान उठाना पड़ता। इस तरह के व्यापार का परिणाम भारत को भी भोगना पड़ता जिसमें बिना किसी आरक्षण के संयुक्त अभ्रक आयोग को अभ्रक की कीमत तय करने की छूट मिल जाती। लेकिन भारतीय व्यापारी अंततः अपने अभ्रक को सरकारी मूल्य पर विदेशी बाजार में बेचने को तैयार नहीं हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व विदेशी बाजार की जो शर्त थी, वह व्यवहारिक तौर पर अपनी वास्तविक स्थिति में लौट आयी। संयुक्त राज्य अमेरिका के सदस्यों की उपस्थिति के कारण ऐसा लगता था कि लंदन के बाजार ने अपने भूतपूर्व पहचान को खो दिया है। सिर्फ तकनीकी सदस्य के रूप में संयुक्त अभ्रक आयोग अपने सेवा प्रदान करते रहे। अभ्रक व्यापार के मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका ने भारतीय बाजार के बारे में काफी जानकारी अर्जित कर ली थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण भी विभिन्न देशों को भारतीय अभ्रक बाजार की जानकारी प्राप्त हुई। फलतः अभ्रक खपत करने वाले लगभग सभी देश भारतीय उत्पादकों से सीधा संपर्क स्थापित करने की कोशित करने लगे। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका ने अभ्रक की आपूर्ति हेतु सीधे तौर पर भारत से संपर्क कायम किया और व्यापक पैमाने पर अभ्रक की मांग करने लगा।

झारखंड (तत्कालीन बिहार) में अभ्रक के उत्पादन में आजादी के बाद धीरे-धीरे बढ़ोतरी हुई। लेकिन 1952 के बाद अभ्रक उत्पादन में तीव्र गिरावट आई। अभ्रक उत्पादन के संदर्भ में आजादी के बाद का तालिका विवरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

वर्ष	मात्रा (किलोवाट)	मूल्य (रूपये में)
1947	84,435	1,08,72,802
1948	92,756	1,21,94,991
1949	98,150	1,31,63,566
1950	1,08,422	1,39,82,884
1951	अनुपलब्ध	1,68,72,817
1952	अनुपलब्ध	10,29,032
1953	3,814,	10,00,089
1954	1,634	5,32,091
1955	5,400	7,79,252
1956	8,785	8,52,286
1957	7,069	7,87,926
1958	14,806	14,96,000
1959	16,338	15,68,491
1960	14,716	16,55,572
1961	13,559	12,43,690
1962	13,835	12,55,630
1963	11,354	11,27,591
1964	11,163	11,7,590
1965	15,368	16,65,970
1966	12,678	11,50,482
1967	10,162	11,34,660

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1947 में अभ्रक का उत्पादन 84,435 किलोवाट था जिसका मूल्य 1,08,72,802 रूपये था जो अगले वर्ष बढ़कर 92,756 किलोवाट हो गया जिसका मूल्य 1,21,94,991 रूपये था। 1949 में 98,150 किलोवाट अधिक था। पुनः अगले वर्ष 1950 में 1,8,422 किलोवाट अभ्रक का उत्पादन हुआ जिसका मूल्य 1,39,82,884 रूपये

था। 1951 के आंशिक आंकड़े ही उपलब्ध है। इस वर्ष 1,68,72,817 रूपये मूल्य के अभ्रक का उत्पादन हुआ।

अभ्रक के उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि का कारण यह था कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने अभ्रक का संग्रह करना शुरू किया था। कोरिया से युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका को यह ज्ञात हुआ कि अभ्रक का सामरिक उपयोग भी है। अतः उसने अपने यहां अभ्रक का संग्रह करना प्रारंभ कर दिया जिससे अभ्रक के व्यापार में अचानक वृद्धि हो गई। लेकिन जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने इसका संग्रह करना बंद कर दिया तो इसके उत्पादन में तेजी से गिरावट आई। 1953 में अभ्रक का उत्पादन 3,814 किलोवाट हुआ जो अगले वर्ष 1954 में घटकर मात्रा 1,634 किलोवाट रहा गया। 1954 के पश्चात् अभ्रक के उत्पादन में थोड़ा सा सुधार हुआ। वस्तुतः अभ्रक की खपत करने वाले देशों में 1950 और 1951 में इसका बहुतायत क्रय-विक्रय किया जाने लगा। इस डर से कि कोरियाई युद्ध के विस्तार सी इसकी आपूर्ति पर रोक न लग जाये। लेकिन 1952 के बाद अभ्रक के उत्पादन और उपार्जन की स्थिति बिगड़ती चल गयी। 1959 के दौरान झारखंड अभ्रक उद्योग की स्थिति इतनी खराब हो गई कि कुल उत्पादन सिमटकर 16,338 किलोवाट पर आ गई जो कि धीरे-धीरे 1967 में घटकर 10,162 किलोवाट ही रह गई जिसकी कीमत पहले 15,68,491 रूपये थी और बाद में 11,34,660 रूपये हो गई।

निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है कि झारखंड (तत्कालीन बिहार) में अभ्रक के उत्पादन में बड़ी तेजी से गिरावट आयी।

वर्ष	मात्रा (किलोवाट)	मूल्य (रूपये में)
1970	9616 (c)	N.A.
	N.A. (S)	N.A.
1971	7804 (C)	N.A.
	N.A. (S)	N.A.
1972	6879 (C)	N.A.
	N.A. (S)	N.A.
1973	6313 (C)	1,33,43
	1363 (S)	N.A.
1974	6483 (C)	4,46,82
	1256 (S)	N.A.
1975	6191 (C)	1,62,75
	1659. (S)	N.A.
1976	5795 (C)	1,59,79
	1987 (S)	N.A.
1977	5559 (C)	1,55,22
	2482 (S)	N.A.
1978	5714 (C)	1,77,09
	2205 (S)	N.A.
1979	5503 (C)	1,72,09
	2825 (S)	N.A.
1980	4610 (C)	1,82,06
	2098 (S)	N.A.
1981	4908 (C)	2,02,09
	2437 (S)	N.A.
1982	4774 (C)	N.A.
	2268 (S)	N.A.
1983	4291 (C)	N.A.
	2019 (S)	N.A.
1984	3336 (C)	N.A.
	1568 (S)	N.A.

*C=Crude, #S= Scrap

तालिका से स्पष्ट पता चलता है कि अभ्रक के उत्पादन में तीव्र गति से गिरावट आयी। यह एक गंभीर विषय है कि अभ्रक के उत्पादन में इतने बड़े स्तर पर क्यों और कैसे गिरावट आयी ? क्या अभ्रक ने अपनी कीमत खो दी? संभवतः अभ्रक के उत्पादन को नकली अभ्रक के कारण आघात पहुँचा हो। यदि काई असरदार कारक कोते तो अभ्रक के मूल्य में गिरावट आती। अतः इसके उत्पादन में गिरवट का कारण कुछ अन्य अवश्य है। 1972 में 1200 निजी अभ्रक के खदान थे जिनमें मुख्य रूप से गिरिडीह, कोडरमा, झुमरी तिलैया एवं हजारीबाग क्षेत्र में थे, जो घटकर 1200 से मात्र 35 पर आ गये।

यह उचित समय है कि अभ्रक उद्योग को बचाने के लिए प्रभावकारी कदम उठाया जाए। अन्यथा धीरे-धीरे झारखंड की भी अभ्रक खदाने बंद हो जाएगी। जब गए बार बीमारी की पहचान हो जाएगी तो उसे प्रभावकारी दवाओं (उपायों) से दूर किया जा सकता है।

अभ्रक खादान की सबसे बड़ी समस्या पूर्वेक्षण का अभाव है। अभ्रक के खदानों का कोयला और लोहे के क्षेत्रों की तरह पुरातत्व विभाग द्वारा पूर्वेक्षण नहीं किया गया। फलतः इस मूल्यवान खनिज सम्पदा के व्यावसायिककरण में समस्या उत्पन्न हो गई। वास्तव में उस समय से, जब खनिज पदार्थ का व्यवसायिककरण हुआ, अभ्रक के पूर्वेक्षण हेतु ज्यादा कुछ नहीं किया गया। इसके चलते दूसरे खनिजों के मुकावले इसे इसका खामियाजा भुगतना पड़ा।

अभ्रक की अनियमितता प्राप्ति के कारण अभ्रक उत्पादन वाले क्षेत्र एक निश्चित स्थिति तक आगे नहीं बढ़ सके। अभ्रक के पूर्वेक्षण का काम अक्सर ठेकेदारों द्वारा किया जाता था। वे अभ्रक का पूर्वेक्षण प्रायः त्रिभुजाकार जांच द्वारा करते थे। यह अभ्रक उद्योग का दुर्भाग्य है कि पुरातत्व विज्ञान जितना कोयला और लोहा के मामले में सफल हुआ है, उतना भूमि के अंदर पाए जानेवले अभ्रक-क्षेत्र को पहचानने में नहीं हुआ है। अतः इसकी पहचान करना काफी चुनौतीपूर्ण है। इस व्यापार में पैसा लगाना भी काफी साहस का काम था। क्योंकि अन्य दूसरे व्यापार की तुलना में यह काफी जोखिम का व्यापार था।

अभ्रक खदान के उपकरण के मूल्यों में भी काफी वृद्धि हो गई थी। इसकी खरीददारी के लिए पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता होती थी। खानों के वेधन-यंत्र, कम्प्रेशन, सम्पीडन, निकास-नली आदि उपकरणों की कीमत में काफी वृद्धि हो गई थी। जबकि इसके विपरीत अभ्रक के मूल्यों में कोई वृद्धि नहीं हुई, फलतः इसमें मुनाफे के काफी कम गुंजाइश रह गइ थी। इसके कारण प्रत्येक वर्ग जो इस व्यापार से जुड़े हुए थे, इसमें पैसा

www.ignited.in

लगाने से पीछे हटने लगे। वित्तीय संस्थाओं से भी सहयोग संभव नहीं था, क्योंकि अभ्रक को एक उद्योग के रूप में घोषित नहीं किया गया था। इसे उद्योग के रूप में घोषित करने के लिए खनिज सलाहकार परिषद् की एक बैठक में विचार-विमर्श किया गया और खान-मंत्रालय ने इस विषाय पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया। उसने राज्य सरकार से इसे "निम्न लघु उद्योग" का दर्जा देने को कहा। लेकिन व्यवहार में ऐसा कुछ भी नहीं किया गया।

अभ्रक उद्योग ने महसूस किया कि निर्यात के रूप में सरकारी कर उचित है, लेकिन मिटको द्वारा निर्धारित जो लागत मूल्य था, वह जमीनी मूल्य से काफी कम था। इसके परिणामस्वरूप खदान मालिकों के लिए यह उद्योग घाटे का विषय हो गया। यह देखा गया है कि अंतराष्ट्रीय बाजार में कुछ ऐसी वस्तुएँ होती हैं जिनकी मांग बराबर होती है। यदि वे अचानक गायब हो जाते है तो यह निर्यातक के लिए घाटे का कारण बन जाता है। अभ्रक उद्योग के निर्यातकों के साथ भी यह बात हुई। अभ्रक के अंतराष्ट्रीय मांग में कमी का प्रभाव खदान मालिकों पर पड़ा। मांग में कमी के कारण अभ्रक के स्क्रैप के मूल्यों में तेजी से गिरावट आई। लेकिन जो परिष्कृत एवं उच्च कोटि के अभ्रक थे, उसकी कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परिष्कृत किए गए अभ्रक का मूल्य अपशिष्ट अभ्रक के मूल्य से काफी उंचा होता था।

पट्टे देने की प्रथा और पट्टे का पुनरारंभ का काम भी काफी जटिल एवं मुश्किल का था। इससे बहुत से व्यापारियों के मनोबल को ठोस पहुँची। उदाहरण के लिए झुमरीतिलैया से सुरेश झांझरी का नाम उल्लेखनीय है जो एक बहुत बड़े अभ्रक उत्पादक थे। लेकिन वर्तमान में उनका झुकाव दूसरे व्यापार की तरफ होने लगा है। इसका मुख्य कारण अभ्रक खनन हेतु पट्टे का काफी विलंब से प्राप्त होना है। खनन हेतु पट्टा प्रदान करने की व्यवस्था सरल होनी चाहिए और खान मालिकों को अपने पट्टे का नवीनीकरण करने में दिक्कत नहीं होना चाहिए। लेकिन सरकारी कार्यालयों में भ्रष्ट प्रशासनिक हस्तक्षेप के कारण व्यापारियों के उत्साह में कमी आयी। जो सरकार के नजदीकी (प्रिय) थे उन्हें पट्टा दिया जाता था।

झारखंड (तत्कालीन बिहार) में किसी भी प्रकमार के उद्योग को चलाना एक बुरा सपना हो गया। विशेष रूप से अभ्रक वाले क्षेत्र में जहां विद्युत की आपूर्ति लगातार बाधित रहती थी जिसका अभ्रक के उत्पादन पर बुरा असर पड़ा। अधिकांश अभ्रक खदान क्षेत्रों में जो विद्युत आपूर्ति थी, वे सिर्फ एक बार आती थी, वह भी कुछ मिनट के लिए। यद्यपि श्री आर॰ मोदी जैसे मध्यम वर्गीय खनिक मालिक, अभ्रक खदान को चलाने के लिए जेनरेटर खरीद रखा था। लेकिन जो छोटे स्तर के खनिक मालिक होते थे वे इसे नहीं खरीद सकते थे जो कि विद्युत समस्या से निपटने के लिए एक आवश्यक चीज थी जिसकी कीमत उस समय लगभग प्रति जेनरेटर 3 से 4 लाख रूपया पड़ती थी। फलस्वरूप जो छोटे व्यापारी थे वे इसे खरीदने का प्रयास नहीं कर सकते थे और न ही इतनी पूँजी खपत करने में सक्षम थे। ऐसी स्थिति में रामेश्वर मोदी ने सरकार को सलाह दी कि जितने छोटे स्तर के अभ्रक खदान मालिक हैं उन्हें ठीके पर जेनरेटर उपलब्ध कराया जाय और यह जेनरेटर सरकार की सम्पत्ति होगी एवं इसका वहन तथा रख-रखाव का खर्च सभी निम्न स्तर के खदान मालिक मिलकर करेंगे, यदि खदान बन्द हो गई तो इसे सरकार को वापस करनी होगी।

वायुमंडल प्रदूषण से भारत सरकार अच्छी तरह परिचित थी जिससे बचने के लिए 1980 में बहुत से नियम कानून बनाये गये जिनमें वन-सरंक्षण अधिनियम एक था। इस अधिनियम के आने के पश्चात् पट्टा प्रदान करना और भी कठिन हो गया। सरकारी विभाग उन लोगों को पट्टा प्रदान करने में संकोच करने लगे जो अपने खच्र पर खदान की मालिकों पर दबाव डालकर नियंत्रण रखा जाता था। इस प्रकार वन क्षेत्र पर्यावरण विभाग का एक हिस्सा हो गया और कड़ाई से प्रदूषण पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

सी॰एम॰आई॰ एवं बी॰एम॰सी॰डी॰ जैसी बड़ी-बड़ी अभ्रक की कम्पनियां बन्द होने की स्थिति में आ गई। इसके पीछे मुख्य कारण ईसाईयों का अभ्रक उद्योग से प्राप्त मुनाफे को लेकर झगड़ा था। ये सभी व्यापारी भारी संख्या में इन क्षेत्रों में अभ्रक के खदान रखे हुए थे, जिसके बंद हो जाने से झारखंड में अभ्रक उद्योग पर बुरा प्रभाव पड़ा। कुछ उत्तम अभ्रक क्षेत्रों को सरकार ने पट्टा प्रथा के अन्तर्गत ले लिया तथा बिहार खनिज विकास के तहत उन्न्त अभ्रक वाले क्षेत्र खरीद भी लिये गए। लेकिन दृढ़ प्रतिज्ञा, उद्देश्यों एवं दोषपूर्ण नीतियाँ बिहार खनिज विकास निगम की समाप्ति का कारण बना और बी॰एम॰सी॰डी॰ द्वारा खरीदे गए अभ्रक की खान कई वर्षो से काम नहीं कर रहें। वर्तमान में राज्य सरकार के अधीन संचालित एकमात्र प्रतिष्ठान जेएमएमडीसी (माइका डिवीजन) के मृतप्राय होने के साथ ही कोडरमा क्षेत्र में माइका की चमक धूमिल हो गई है। करीब चार दशक से जिले की अर्थव्यवस्था की रीढ़ रहे माईका की सभी खदाने इन दिनों बंद हालत में है। कोडरमा में संचालित जेएसएमडीसी (झारखंड राज्य खनिज विकास निगम) के कार्यकाल में कार्यरत करीब 55 कर्मचारियों के पासा कोई काम नहीं बचा है। इन्हें बैठे-बिठाये सरकार

तनख्वाह दे रही है। वहीं निगत की अधिकतर खदानों पर जंगल एवं खनन माफियाओं का कब्जा है।

इस प्रकार अभ्रक के उत्पादन और उसके खानों के तीव्र गति से पतन के लिए उपर्युक्त कारण जिम्मेवार रहे होंगे। यह अफवाह है कि अभ्रक ने अपनी पहचान एवं उच्च स्थान सिन्थेटिक अभ्रक के आ जाने के कारण खो दिये। अगर इस बात में सच्चाई होती तो अभ्रक की स्थिति ठीक वैसी ही होती जैसे भारत में नील के पौधे के साथ हुआ। अर्थात् उसका प्राकृतिक मौत। यह सच है कि अभ्रक 'सिन्थेटिक अभ्रक' के मुकाबले में असफल हो गया लेकि सिंथेटिक (संशिलष्ट) अभ्रक को स्वच्छ अभ्रक से मुकाबला करना धोखे के समान है। वास्तविक अभ्रक की उपयोगिता और मांग आज भी उसी तरह है जब अभ्रक इकाई की कीमत पर मिलते थे। उपलब्ध इकाई मूल्य से संसाधित अभ्रक निर्यात 1974-75 में 5.67 किलोग्राम थो जो 1981-82 ई0 से बढ़कर 19.30 किलोग्राम हो गया। इस दौरान वर्तमान वर्ष में उपलब्ध इकाई मूल्य लगभग 20.90 किलोग्राम हो गया।

निष्कर्ष:

आज अभ्रक उद्योग पतन की स्थिति में है। घटिया क्वालिटी और कम मांग के बावजूद चीन ने माइका पेपर (संश्लिष्ट अभ्रक) के उत्पादन में अपनी साख कायम कर ली है। चीन में माइका पेपर बनानेवाले 20 से अधिक प्लांट लग चुके हैं। लेकिन दुनिया में सबसे अच्छा और बड़ा अभ्रक भंडार होने के बावजूद झारखंड में इस पर आधारित उद्योगों का विकास नहीं हो पा रहा है। अभ्रक उद्योग एवं व्यापार की समाप्ति नहीं हो सके इसके लिए जिम्मेदार भारत सरकार, झारखंड सरकार, निजी खदान मालिक एवं उच्च स्तरीय व्यापारियों को सामूहिक रूप से ठोस कदम उठाना होगा।

सन्दर्भ सूची:

1. के॰के॰ दत्त, 'कॉम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ़ बिहार, भाग-3 पार्ट-2, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च संस्थान, पटना, 1976, पृ॰-510
2. जयनारायण ठाकुर, 'माईका इन्डस्ट्री इन बिहार', जर्नल ऑफ़ बिहार रिसर्च सोसाइटी, भाग- LVII पार्ट- I-IV जनवरी-दिसम्बर, 1971, पृष्ठ-173
3. विपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, 'आजादी के बाद भारत (1947-2000), नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ-454
4. वही,
5. 'इंडियन नेशनल कॉंग्रेस', इकोनॉमिक्स रिजोल्यूशन, पृ0-8
6. एस॰ए॰ माजिद, 'द माइका इन्डस्ट्री ऑफ़ बिहार', भाग-प्ए 1953, पृ0-67
7. वही,
8. वही,
9. 'द इम्पीरियल गजेटियर ऑफ़ इंडिया, भाग-प्प्प्ए पृ0-153
10. एस॰ए॰ माजिद, 'द माइका इन्डस्ट्री ऑफ़ बिहार', भाग-प्ए 1953, पृ0-68
11. 'बिहार एण्ड उड़ीसा इन 1923', पृ0-67
12. एस॰ए॰ माजिद, 'द माइका इन्डस्ट्री ऑफ़ बिहार', भाग-प्ए 1953, पृ0-68
13. सी॰एस॰ फॉक्स, 'मिनरल प्रोडक्शन ऑफ़ इंडिया (1919-23): रेकॉर्ड्स जी॰एस॰आई', भाग- LVII 1935, पृ0-240
14. बी॰ए॰ कॉलिन्स, 'बिहार एण्ड उड़ीसा इन 1925-26, पृ0-122
15. 'रिसेन्ट जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया', भाग-LVII 1935 पृ0-240
16. पी॰टी॰ मेन्सफील्ड, 'बिहार एण्ड उड़ीसा इन 1930-31, पृ0-106
17. आर॰ए॰ई॰ विलियम, 'बिहार एण्ड उड़ीसा इन 1931-32, पृ0-112
18. 'रिपोर्ट ऑफ़ द लेबर इन्क्वायरी कमेटी, भाग- I, 1940, पृ0-234
19. चंदमूल राजगढ़िया, 'माइनिंग प्रोसेसिंग एण्ड यूज ऑफ़ इंडियन माइका', न्यूयार्क, 1951, पृ0-203-207
20. 'बिहार स्टेसटिकल हैण्डबुक, 1958, पृ0-71-72
21. मिटको, पटना

www.ignited.in

22. 'आज', दैनिक समाचार पत्र, जून, 28, 1985

23. मिटको, पटना

24. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, राँची, 5 अगस्त, 2010

25. वही

26. मिटको पटना

27. 'आउटलुक साप्ताहिक', 25 जुलाई, 2005, पृ0-20

Corresponding Author

Dr. Ranjan Kumar*

ICHR, JRF, UGC Net, Patna University, Patna, Bihar

ranjan.kumar1201@gmail.com